ॐ

REGD. NO. L. 2077

वर्ष १] अङ्क ५]

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भावग्राहि विमुक्तानां शास्त्र गर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात् तेषां जन्म शतैरपि ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादक—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

माघ सम्वत् १९८३ ॥

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः"।

वार्षिक चन्दा २)

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष १ } भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा, माघ पूर्णिमा सं० १९८३। { अङ्क ५

॥ मंगलाचरणम् ॥

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवय नमो नमः ॥१॥

जो देव अन्तर्यामी जगदीश्वर अग्नि जल और संपर्ण जगत् में व्यापकत्वेन स्थित, और जो औषधियों में तथा वनस्पतियों में व्यापक है उस देव के लिये नमस्कार हो ॥ १ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥२॥

जो देवों का उत्पादक है और जो विश्व का अधिपति है वह जगदाधार रुद्र महर्षि सृष्टिकी

आदि में ब्रह्माको उत्पन्न करता हुवा हम को शुभ बुद्धि से युक्त करे ॥ २ ॥

य एको वर्णो बहुधा शक्ति योगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥३॥

जो जगन्नियता विभु प्रयोजन वश होकर अपनी शक्ति से एक वर्ण को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि भेद से अनेक भेदों में विभक्त कर देता है और विश्व का आदि है और अन्त में अपने में लीन कर लेता है वह देव हमको शुभ बुद्धि से युक्तिकरे ॥ ३ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥

जो देवों का उत्पादक विश्व का अधिपति महर्षि रुद्र स्वरूप महादेव उत्पन्न होते हुवे ब्रह्म को देखता हुवा वह शंकर स्वरूप रुद्र हमको शुभ बुद्धि से युक्त करे ॥ ४ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥५॥

जिसने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न किया और जिसने वेदों का प्रादुर्भाव किया उस आत्मा और बुद्धि के प्रकाश देव की मैं मुमुक्षु शरण को प्राप्त होता हूं ॥ ५ ॥

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥६॥

हे रुद्र तू अजात् है अर्थात् आप के उत्पन्न करने वाला कोई नहीं है इसलिए आप की महिमा को अज्ञान से भीरु कोई विद्वान् पुरुष आपके दक्षिण मुख को प्राप्तहोता है इसलिये वह आपका दक्षिण मुख हमारी रक्षा करे ॥६॥

दृश्यिस्तु शुद्धोहमविक्रियात्मको न मेऽस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः।
पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः सम्पूर्णमूमाहमितीह भावय ॥७

मैं ज्ञान स्वरूप शुद्ध आविक्रियात्मक हूं मेरे स्वभाव से कोई विषय विशेष नहीं है और आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, सर्वत्र मैं ब्रह्म हूं ऐसा मुझ को जान ॥ ७ ॥

अजोऽमरश्चैव तथा जरोऽमृतः स्वयं प्रभः सर्वगतोऽहमव्ययः ।
न कारणं कार्य मतीत्य निर्मलः सदैव तृप्तोऽहमितीह भावय ॥८॥

मैं अजन्मा अमर तथा वृद्धावस्था भाव रहित अमृत स्वयं प्रकाश स्वरूप सर्वत्र व्यापक विकार रहित कार्य कारण से परे निर्मूल सदा तृप्त हूं ऐसा तू जान ॥ ८ ॥

धाता विधाता पवनः सुपर्णो विष्णुर्वराहो रजनी रहश्च ।
भूतं भविष्यत्प्रभवः क्रियाश्च कालः क्रमस्त्वं परमाक्षरं च ॥९॥

हे परमात्मन् आप स्वयं सब को धारण करने वाले विधाता सर्वोत्पादक वायु शेषनाग विष्णु वराह रात्री दिन क्रिया काल ऋतु परमाकर ओं स्वरूप हो ॥ ९ ॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ता द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥१०

ईश्वरों के परम महेश्वर देवताओं में परम दैवत रक्षकों में परम रक्षक भुवनों के ईश और स्तुत्यर्ह उस परम देव को हम जानें ॥ १० ॥

विश्वे निमग्न पदवी कवीनां त्वं जातवेदो भुवनस्य नाथ ।
अजातमग्रे स हिरण्यरेता यज्ञस्त्वमेवैक विभुः पुराणः ॥११॥

संसार में प्रसिद्ध महिमा कवियों के कवि अग्नि स्वरूप भुवनों के नाथ अग्नि के उत्पत्ति स्थान यज्ञ स्वरूप पुराण पुरुषोत्तम आप ही हैं ॥ ११ ॥

भक्ति ।

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजः ।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥
सच्चिदानन्दकन्दाय जगदंकुर हेतवे ।
सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे ॥
यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भातियत् ।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

"भगवतो भक्तिः भगवद्भक्तिः" भगवत की भक्ति सब प्राणियों को विशेष कर मनुष्य मात्र को करनी चाहिये । जिसने वस्तुओं के अवलोकनार्थ हम को नेत्र दिये हैं, सुनने के लिये श्रोत्र, सूंघने के लिये घ्राण, रस के लिये जिह्वा, स्पर्श केलिये त्वचा आदि दी हैं । यदि यह पाँच इन्द्रियां न होतीं तो हम को किसी पदार्थ का ज्ञान न होता । ऐसे ही मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चार अन्तर की इन्द्रियें दी हैं जैसे बुद्धि से निश्चय करते हैं, चित्त से चिन्तन, मन से मानना और अहंकार से अहंभाव का ज्ञान । यह हम को ज्ञान के साधन दिये हैं । वैसे ही कर्मेन्द्रियें दी हैं हस्त पाद, पायूपस्थ, वाणी इनके विना हम को कर्म नहीं कर सकते । भीतर की कर्मेन्द्रियें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदानादि हैं इन से रक्त के कण २ और नाड़ियों में क्रिया हो रही है जिनके द्वारा हम जीवित हैं । ऐसे ही पृथ्वी बसने के लिये, जल पीने के लिये, वायु जीने के लिये, अग्नि पचने तपने के लिये, आकाश निकले बढ़ने के लिये; सूर्य, चन्द्रमा, तारे, विद्युत् और आकाशगंगा इत्यादिक हमारे जीने और प्रसन्न करने के लिये हमें दया करके प्रदान किये हैं । ऐसे परमेश्वर को भूलना कितनी बड़ी कृतघ्नता है । हम को चाहिये कि सब पदार्थों से बढ़कर परमात्मा से प्रेम करें पूर्वोक्त सारे पदार्थों को उस के प्रेम मार्ग में लगावें स्त्री, पुत्र, मित्र, धनादि से जो प्रेम होता है उन सब से बढ़ कर हम परमेश्वर से प्रेम करें । परमेश्वर से प्रेम करना ही भक्ति है । "भजनं अन्तः करणस्य भगवताकारता रूपं भक्तिः,, भजन करना, भजन गाना, अन्तः करण का भगवताकार हो जाना भक्ति है । "भक्ति शब्देन फलमभिधीयते" भक्ति शब्द से श्रवण कीर्त्तनादि जो साधन हैं उन का फल विधान किया है । यथा "भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरणं क्रियते अनयेति भक्तिः,,

मनः करोति पापानि मनो लिप्यते पातकैः ।
मनश्च तन्मयो भूत्वा न पुण्यैर्न पातकैः ॥

मन पाप करता है, मन पातक से लिपायमान होता है । जब मन भगवदाकार होगया तब पुण्य पापों से रहित होकर भगवत् को प्राप्त होता है । जो अपनी इन्द्रियों के तृप्ति के वास्ते प्रीति होती है उस का नाम काम है । कृष्ण की इन्द्रियों के प्रसन्न होने के

लिये जो प्रीति और इच्छा है उसका नाम प्रेम है। जैसा कि:-

आत्मेन्द्रिय प्रीति और परितृप्तये काम ।
कृष्णेंद्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम ॥

जो संसार में पुत्र पौत्र के भरने में चिन्ता होती है: धन धान्य, भोग, यश इत्यादि की चिन्ता उत्पन्न होती है वह यदि भगवान् के चरणारविन्द में हो तो फिर यम राज की और जन्म मरण रूपी वेदना की कभी चिन्ता नहीं होती है। वह जन्म मरण के दुःख से छूट कर परमानन्द परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जैसे:-

या चिन्ता भुवि पुत्र पौत्र भरणे, व्यापार सम्भाषणे । या चिन्ता धन धान्य भोग यश सां, लाभे सदा जायते ॥ सा चिन्ता यदि नन्द नन्दन पद द्वन्द्वारविन्दे क्षणम् । का चिन्ता यम राज भीम सदने द्वारं प्रयाणे प्रभो ॥

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया ।
तथा चेद्विश्व कर्तारं को न मुच्येत् बन्धनात् ।

धन की इच्छा से सादर जैसे धनवान् की स्तुति करते हैं उसी प्रकार यदि विश्व के कर्त्ता का चिन्तन करेंगे तो कौन बन्धन से मुक्त न हो। अर्थात् मुक्ति में कोई सन्देह नहीं भगवान् के प्रेम में कभी रोना चाहिये कभी उन्हें याद करके हंसना चाहिये। उनके प्रेम में नाचना चाहिये गाना चाहिये अनुशीलन करना चाहिये। कभी सब से निवृत्त हो कर चित्त वृत्ति को हृदयाकाश के प्रकाश में लगा कर चुप होजाना चाहिये।

क्वचिद्रुदन्त्यच्युत चिन्तया,
क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजम् ।
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥

प्रथम भगवद्भक्त महात्माओं की सेवा करनी चाहिये। सेवा से उन की दया का पात्र बनता है श्रद्धा होती है। श्रद्धा से हरि गुण श्रवण करता है। फिर परमात्मा में प्रेम की वृद्धि होती है।

" प्रेम्णोऽथ परमाकाष्ठा उदिता भक्ति भूमिका ,,

इस लिये भगवद्भक्तों की सेवा करनी, उन का सत्संग करना, उन के मुखारविन्द से ईश्वर के गुण महात्म्य सुनना, साथ कीर्त्तन करना, भगवद्गुण का बार बार स्मरण करना, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि सब भगवत् के लिये करना भक्ति है। भक्ति महात्माओं की कृपा अथवा ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है। ईश्वर की जिस पर कृपा होती है उसी भक्त के हृदय में भक्ति प्रकाशमान् होती है यथा:-

" प्रकाश्यते कापि पात्रे यथा वृज गोपिकानाम् ।

भगवत् के चरणों में गाढ प्रेम, अपनी सर्व वासनाओं के ऊपर भगवदिच्छा का अधिकार स्थापित करना, अर्थात् जितनी वासनायें फुरें सब भगवदिच्छा से प्रेरित हों वा भगवदिच्छा को पूर्ण करने वाली हों और

उनके विरुद्ध कोई वासना न फुरने पावे। हृदय में भगवत्प्रेम की अजस्र धारा ऐसी निरन्तर बहती रहे जैसे गंगा का प्रवाह कभी एक क्षण भी हृदय भगवत् प्रेम से शून्य न रहे। और जैसे मीन के लिये जल ही जीवन होता है वैसे ही भक्ति मार्ग पर चलने वाले के लिये भगवत् प्रेम ही जीवन होता है। श्रोत्र से भगवत् के गुण श्रवण करना, जिह्वा से उन के गुण कीर्तन करना, हस्तों से पूजा और सेवा करनी, पगों से उनके कार्य पूर्ण करने केअर्थ चलना मुख से नामोच्चारण करना तथा भगवत् कथा का पाठ करना, नासिका से भगवत् चरण से स्पर्श हुये पुष्पों की सुगन्धि लेनी इत्यादि सर्वाङ्गों को भगवत् के अर्पण करना ही जीवन का उद्देश्य है। मन से स्वरूप का चिन्तन करना, बुद्धि से ध्यान, चित्त से स्मरण, और अहंकार से भगवत् पर अपना मान करना इस प्रकार आत्मा से आत्म निवेदन तथा सर्व भगवत् समर्पण करना ही, जीवन का आधार है॥

जब मनुष्य अपनी सम्पूर्ण चेष्टा और कर्मों को भगवत् के समपर्ण कर देवे और उस के विस्मरण में परम व्याकुलता होवे तब जानो कि भक्ति का समुद्र मेरे अन्दर उमड़ रहा है। भक्ति कर्म और ज्ञान से भी बड़ी है। भक्त अपने सम्पूर्ण कुल और पृथिवी को पवित्र करते हैं।

तदर्पिताऽखिला चारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलता । सा तु कर्मज्ञानेभ्योप्यधिकतरा ।

(सूत्र)

ईश्वर पूजा में अनुराग होना पराशर के मत में भक्ति है। कथादि में अनुराग होना गर्ग के मत में भक्ति है। आत्मा में निरन्तर रति करना शाण्डिल्य के मत में भक्ति है। नारद जी के मत में ईश्वर में सब आचरणों का अर्पण कर देना और उस के विस्मरण में परम व्याकुल होना भक्ति है। भगवदिच्छा के आधीन रहना अपनी वासना स्थूल हो चाहे सूक्ष्म किंचिद्व भी नहीं रहनी चाहिये। केवल परमात्मा की इच्छा को परम इच्छा समझ कर उस को पालन करना और अपने मिथ्याअहं का उस में विस्मरण करना ही अन्तिम पद है। भगवत् को छोड़ किसी वस्तु का आश्रय न लेना किन्तु प्राण और आत्मा को भगवत् से उत्पन्न हुये जान और उसी के आधार समझ उसी में लीन कर देना चाहिये। "स एव अधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमिति। अथातो अहंकारादेश एव अहमेव अधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन। यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा॥

भगवद्भक्त को सब कुछ भगवदाकार ही प्रतीत होता है। आगे पीछे दायें बायें ऊपर

नीचे सब कुछ परमात्मा ही परमात्मा दिखाई देते हैं। भगवद्भक्तमें और परमात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं है। भगवद्भक्त भगवान् के लिये और भगवान् भक्त के लिये है। भगवान् भक्तों के द्वारा ही मिलते हैं। मुझ से मिलना जो चाहे कर भक्तन की सेव। उनमें होकर मैं मिलूं करूं बहुत ही हेव॥
जहां भक्त मेरे पग धरें मैं धर देऊं हाथ।
लारे लाग्यो ही फिरूं कभी न छोड़ूं साथ॥

॥ भजन ॥

प्राणों के प्राण पै जिया वारूं,
प्राण तजूं प्रभु तुम्हें ना विसारूं॥
मेरे तो प्राणों के प्राण तुम्हीं हो।
प्राणों के स्वामी मैं कैसे विसारूं॥
तुम्हरे दर्श नयन हों शीतल।
हृदय दृष्टि से तुम्हें ही निहारूं॥
तुम्हारी प्रेम अग्नि के द्वारे।
नीच मलीन भावों को जारूं॥
दृढ़ विश्वास और प्रेम के द्वारे।
जीवन दाता मैं तुम्हें ही पुकारूं॥

॥ भजन ॥

मैं नित भक्तन हाथ बिकाऊं।
आठों याम हृदय में राखौं पलकनहीं विसराऊं
कल न परत वैकुण्ठ बसत मोहिं,
योगिन मन न समाऊं।
जहं मम भक्त प्रेम युत गावहिं,
तहां बसत सुख पाऊं॥
भक्तन की जैसी रुची देखौं,
तैसो ही वेष बनाऊं॥
हारौं अपने वचन भक्ति लगि,
तिनके वचन निभाऊं।
ऊंच नीच सब कारज भक्त के,
निज कर सकल बनाऊं॥
पद धोऊं रथ हांकों,
मांजौं वासन छान छवाऊं।
मांगौं नाहिं दाम कछु तिनतें,
नाहिं कछु तिन ही सताऊं॥
प्रेम सहित जल पत्र पुष्प फल,
जो देवें सो खाऊं॥
निज सर्वस्व भक्त को सौंपो,
अपने सत्व भुलाऊं।
भक्त कहैं सोइ करौं निरन्तर,
बेचे तो बिक जाऊं॥

॥ भजन ॥

हरि को हरि जन अति ही पियारे
हरि हरि जन में भेद न राखें अपने सम करि डारें
जाति पांति कुल धाम धर्म धन,
नाहिं कछु बात बिचारें।
जेहि मन हरि पद प्रेम अहैतुक,
तेहि ढिंग नेक बिसारें॥
व्याध निषाद अजामिल गणिका,
केते अधम उधारे।
करि खग वानर भालु निशाचर,

प्रेम कियो जिन तारे ॥
परखि प्रेम हिय हरखि राम,
भिलनी के भवन पधारे ।
बार हँबार खात झूठे फल,
रहे सराहत हारे ॥
विदुर घरनि सुधि बिसारीतनु की,
कृष्ण जबहिं पगुधारे ।
कदली फल के छिलके खावे,
प्रेम मगन मन भारे ॥
रे मन ऐसे परम प्रेम मय,
हरि को मत बिसरारे ।
प्रभु के पद सरोज रस चाखन,
तू मधुकर बनिजारे ॥

॥ भजन ॥

श्याम अब मत तरसाओ जी
मन मोहन नन्द लाल दया कर दरश दिखाओ जी
व्याकुल आज आप की राधा माधव आवो जी,
तव दर्शन लगि तृषित दगन को सुधा पिवावो जी
प्राणाधार प्राण यह निकसन वेगि सिधाओ जी,
तुम बिन प्राण रहें अब नाहीं धाइ बचाओ जी ।
राधा कहत गये राधा के पुनि पछिताओ जी,
राधा बिन श्याम नहिं राधा कृष्ण कहावो जी ।

॥ भजन ॥

श्याम ने मुरली मधुर बजाई
सुनत टेर तनु सुधि बिसारी,
सब गोप बालिका धाई ॥ टेक ॥
लंहगा ओढि ओढना पहिरे, कञ्चुकि भूलि पराई । नकबेसर डारे श्रवणन मंह, अद्भुत साज सजाई ॥१॥
धेनु सकल तृण चरन बिसारयो, ठाडी श्रवण लगाई । बछुरन के स्तन रहे मुखन मंह सो पय पान भुलाई ॥२
पशु पक्षी जहं तहं रहे ठाडे, मानो चित्र लिखाई । वृक्ष पहाड़ प्रेमवश डोले, जड़ चेतनता आई ॥३॥
कालिन्दी प्रवाह नहीं चाल्यो, जल चर सुधि बिसराई । शशी की गति अवरुद्ध रहे, नभ देव विमानन छाई ॥ ४ ॥
धन्य बांस की बनी मुरलिया बड़ो पुण्य करि आई । सुर मुनि दुर्लभ रुचिर बदन नित राखत श्याम कुंवाई ॥ ५ ॥

॥ भजन ॥

कान्हा आजाज्यो बरसानों मेरो गांव ॥ टेक ॥
सूरज सोरी पौर हमारी राधा मेरो नाम ।
मैं बेटी वृष भान नन्द की भानो खर को न्हान ॥
गहवर बन और सकरी खोर सन्तन को विश्राम ।
चन्द्र सखि भज बाल कृष्ण छवि भजले ना हरि नाम ॥ १ ॥

॥ भजन ॥

थारो नेड़ो लाग्यो मोकू राजा रण छोड़रे ।
राजारण छोड़ रे रंगीला रण छोड़ रे ॥ टेक ॥
अधम उधारण नाम तुम्हारो, महातम तैनूं मोटूं रे । हरतां फरतां तुझने सुमरूं बाकी सर्वे खोटुं रे ॥ १ ॥
काशी देखी देखी द्वारका, तीरथ देख्यां जा ज्यांरे । सत्संगत मां बैठो त्यारे मनड़े

मुक्ति पा जा रे ॥ २ ॥
भव सागर में डूब पड़ा हूं सगा सवन्धी लूटे रे।
दास कहे जो दया करो तो भवना बन्धन टूटे रे ॥ ३ ॥

॥ भजन ॥

जैसे ही राखो वैसे ही रहौं ॥टेक
जानत हो सुख दुःख सब जन को, मुख करि कहा कहौं ॥१॥
कबहुंक भोजन देत कृपा करि, कबहुंक भूख सहौं २॥
कबहूक चढौं तुरंग महागज कबहुंक भार बहौं ॥३
कमल नयन घनश्याम मनोहर अनुचर भयो रहौं ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु भक्त कृपा निधि तुमरे चरण गहौं ॥ ५

॥ भजन ॥

हौं हरि सब पतितन को नायक ॥
को करि सकै बराबरि मेरी एते मन को लायक ॥ टेक ॥
जो तुम अजामील सों कीनी सो पाती लिख पाऊं । होय विश्वास भलो जिय अपने और हूं पतित बुलाऊं ॥ १ ॥
सिमिट जहाँ तहाँ ते सब कोऊ, आय जुरे इक ठौर । अब के इतने आनि मिलाऊं बेर दूसरी और ॥ २ ॥
होड़ा होड़ी मन हुलसा करि करैं पाप भर पैट। सबही मिल कर पायन पारौं यह है हमारी भेंट ॥ ३ ॥
ऐसी कित कै बनाऊं प्राण पति सुमरौं है भयो आडो । अब की बेर निबेर ले प्रभु सूर पतित को ताड़ो ॥ ४ ॥

भगवद्भक्ति आश्रम ।

आज मैं परमात्मा को शिर झुका कर कोटान कोटि धन्यवाद देता हुवा नमस्कार करता हूं जो हमारे नीचे ऊपर और बाहर भीतर छाया हुवा है और विशेषतः हृदय में विराजमान है । भगवद्भक्ति आश्रम में बैठा हुवा भक्ति में लेख देने के लिये चहुं ओर देखता हूं एक ओर आश्रम में बहुत उत्तम गोशाला विद्यमान है जहां गोसेवी

गौओं की भली प्रकार सेवा करते हैं । गौवों के उत्तम वंश होने के लिये यत्न करते हैं समझते हैं जब गौ बहुत दुधार बन जायंगी तो उन की बहुत क़ीमत बढ जायगी तब चमड़े आदिके लोभसे जो मारी जाती हैं वह फिर न मारी जायंगी । जब इनके लिये पर्याप्त गोचर भूमि छुट जायगी तब प्रत्येक मनुष्य कम से कम एक गौ तो रख ही सकेगा । जिस के घर में एक गौ भी दूध देने वाली नहीं है उस का अज्ञानांधकार नाश होकर कैसे कल्याण को प्राप्त होगा ।

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुसारिणी ।
मंगलानि कुतस्तत्र कुतस्तत्र तमक्षय ॥

(अत्रि)

दूसरी ओर कन्यापाठशाला और महिलाश्रम है । जहां सब देवियां प्रेम पूर्वक पढती हैं और गणना में लगभग चालीस हैं । जो प्रातः काल और सायंकाल भगवान् की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करती हैं और तप का जीवन व्यतीत करती हैं और समादर से रहती हैं । मनुजी कहते हैं कि "जिस देश में जिस जाति में स्त्रियें पूजी जाती हैं वहां देवता जन्म लेते हैं । इस के विपरीत जिस देश में जिस जाति में इन को क्लेश और इनका निरादर होता है वहां सब क्रियायें निष्फल होती हैं ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रियाः ॥

एक ओर दलितोद्धार पाठशाला है जहाँ भंगी, चमार, धानुक इत्यादिकों के लड़के पढते हैं । धानुक धनुष्धारी, चमार चमन ऋषि और भंगी वालमीक ऋषि कहाते हैं । इनका सब आदर करते हैं यह तीर्थ में स्नान करते हैं आश्रम के कूवों पर चढ सकते हैं और शिव जी पर जल चढाते हैं । गणना में पचास साठ के लगभग हैं । कबीर आदि महात्माओं के भजन, गीता के श्लोक, रामायण की चौपाई आदि बड़े प्रेम से गाते हैं । खंजरी ढोलक झांझ और खड़ताल बजाते हैं और प्रेम में गद्गद होजाते हैं । मनुष्य समाज एक बड़ा देवता है जैसे जनता ही जनार्दन है "जनता एव जनार्दनः,, जिस का ब्राह्मण शिर, क्षत्री भुजा और छाती हैं, और वैश्य उदर और जंघा तथा चमार चरण हैं । जैसा मनुष्य चरणों की सेवा करने से, चरणों के धोने से अथवा झाड़ने से या पूजने से प्रसन्न होता है ऐसा शिर, छाती और पेट के पूजन से प्रसन्न नहीं होता । ऐसे ही परमात्मा भी इनका विद्या पढाने से, इन की मलिनता हटाने से, दरिद्रता छुड़ाने से, अपने गले लगाने से और आदर सत्कार करने से प्रसन्न होता है ।

जैसेः—

जिस का कोई न होय हृदय से उसे लगावे ।
प्राणी मात्र के लिये प्रेम की ज्योति जगावे ॥
सब में विभु को व्याप्त जान सब को अपनावे

है बस ऐसा वही भक्त की पदवी पावे ॥

एक ओर प्रेस और अतिथी आश्रम है। एक ओर ब्रह्मचर्याश्रम है जहां ब्रह्मचारी संस्कृत पढ़ते हैं और शारीरिक परिश्रम करते हुए सादा जीवन बिताते हैं। पश्चिम दिशा में पर्वत माला सुशोभित है। आश्रम के बीच में बड़ा रमणीक एक तालाब है जिस का "रामसर" नाम है उसके चहूं ओर भान्ति भांति के वृक्ष लगे हुए शोभायमान होरहे हैं यह आश्रम पूर्व के महर्षियों के आश्रमों का भले प्रकार ज्ञान कराता है। यहां शान्ति छाई रहती है। देखने से मनुष्य का मन प्रसन्न होता है। रेवाड़ी जंकशन से १॥ मील है इस को अवश्य देखना चाहिये। और इस का अनुकरण समस्त संसार को करना चाहिये।

मिश्रित उपदेश

मनुष्य को सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य मानना चाहिये।

'त्रयकाला बाधित्वं सत्यत्वम्'

तीनों कालों में जिसका बाध न हो अर्थात् तीनों कालों में जो एक रस रहे उसे सत्य कहते हैं। सत्य बोलने से वाणी सिद्ध होती है, संकल्प फलीभूत होते हैं। सत्यासत्य के विषय में शास्त्र कहते हैं।

न सत्य वचनं तत्वं नातत्व वचनं मृषा।
यद्भूत हित मत्यन्तं स सत्य मिति कथ्यते ॥

(व्यास)

न सत्य वचन तत्व है, न असत्य वचन अतत्व है। जिससे भूतों का अत्यन्त हित हो वह सत्य कहाता है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयाद्वेश धर्मः सनातनः ॥

सत्य बोले, प्यारा बोले, अप्रिय सत्य न बोले (जैसे काणे को काणा कहना और सूरदास को अन्धा) प्यारा हो परन्तु असत्य हो ऐसा भी न बोले यह सनातन धर्म है।

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

किसी के चित्त को खराब न करने वाला सत्य, प्रिय, हितकर और प्रमाण युक्त वचन बोले यह वाणी का तप कहा है।

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
।अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेको विशिष्यते ॥

सहस्र अश्वमेध और सत्य को तराजू से तौला तो सत्य ही विशेष रहा ।

इदं सत्य मिदं सत्यं ,सत्यमेतदिहोच्यते ।
अहं सत्यं परब्रह्म मत्तः किंचिन्न विद्यते ॥

यह सत्य है यह सत्य है सत्य यह यहां कहा जाता है। मैं सत्य परब्रह्म हूं मुझसे भिन्न किंचित् मात्र भी नहीं ।

\+ × + ×

जैसे कोई मनुष्य भागते भागते थक गया हो उस की अपेक्षा बैठ जाने में अधिक आनन्द होता है उससे अधिक सोने में और उससे अधिक मरने में। जब मनुष्य संसार में जन्मता है तब मानो कारागार में फंसता है जब शरीर छोड़ता है तब कारागार से मुक्त होता है। मुमूर्षु को कुछ दिन पहले से ही मृत्यु के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। कान बन्द करने पर घोष सुनाई नहीं देता दीपक में गन्ध, नाक का दीखना, खास स्वप्न दीखना इत्यादि ।

इस मनुष्य के तीन शरीर हैं। तीनों लोकों से सम्बन्ध रखते हैं। स्थूल शरीर भूलोक से, सूक्ष्म भुवर्लोक से और कारण स्वर्गलोक से। भूलोक से जब मरके जाता है तो भुवर्लोक को प्राप्त होता है और भुवर्लोक से स्वर्गलोग को प्राप्त होता है। जल में पड़ी हुई बाबाजी की तूम्बी के समान ऊपर ही ऊपर जाता है लौट कर फिर नहीं आता अन्त में मुक्त हो जाता है। तूम्बी में कंकर पत्थर भर देने से अथवा दाब देने से वह नीचे जाती है और कंकर पत्थर निकल जाने से वह फिर ऊपर ही को उन्नति करती है। ऐसे ही जीवात्मा अविद्यादि दोषों के कारण जन्म मरण में आता है और दोष छुटने पर मुक्त होजाता है। जन्म लेता हुवा सारी बुराइयों से युक्त होता है और शरीर छोड़ता हुवा मुक्त होता है जब आदमी मरने को होता है तो बड़ी शान्ति और शीतलता का अनुभव करता है। शरीर शून्य पड़ता जाता है और उससे वह सहज सहज अपने आप को सकोड़ता है। आंखों में रहने वाला विश्व तैजस से मिलता है तब इसकी आंखें निठरती हैं नाड़ियें ऊपर चढ जाती हैं। यह अपने आपको शून्य में जाता हुवा अनुभव करता है मानो मेरा नाश होता है मैं किसी में समाता हूं मुमूर्षु के सम्बन्धि उसके चहुंओर बैठे हुए कहते हैं कि "मुझे जानता है, मुझे जानता है,,। जब तक वाणि मन में, मन प्राणमें और प्राण परले देवता में लय नहीं होता तब तक जानता है। जब विश्व तैजस से मिलता है और तैजस हृदयाकाश में उतरता है तब लोग कहते हैं कि इसके हृदय को देखो यहां कुछ गरमाई है या नहीं। अन्तमें हृदय कमल का द्वार खुल जाता है और यह निकलता है। नेत्र द्वारा अथवा मुख द्वारा दशवें द्वार द्वारा जैसी उसकी उपासना और संकल्प होता है उसी इन्द्रिय के गोलक द्वारा

निकलता है।

"अस्माल्लोकात्प्रैति स वायु मागच्छति"

जब इस लोक से प्रयाण करता है तब वायु लोक को प्राप्त होता है।

"यमेन वायुना सत्य राजन्"

यम नाम वायु लोकका है जिस को भुवर्लोक भी कहते हैं। मरते समय के चार दृष्टान्त ग्रन्थों में दिये गये हैं जैसे तृण जलायुका, जोंक पहले अगले दो पैरोंसे दूसरी वस्तु को आलम्बन कर पीछले दो पैरों को खींच लेता है ठीक इसी प्रकार यह जीवात्मा सूक्ष्म शरीर को धारण कर स्थूल शरीर को छोड़ देता है जैसे चलता हुवा पुरुष अगले पैर को आगे रख दूसरे को उठाता है। इसी प्रकार से जीवात्मा सूक्ष्म शरीर को धारण कर स्थूल शरीर को छोड़ता है। सूक्ष्म शरीर दशेन्द्रियों की शक्ति, पांच प्राण, मन बुद्धि चित्त अहंकारादि चार अन्तः करण इन उन्नीस तत्वों का बना हुवा है सूक्ष्म ज्योति रूप है इसका रंग तीजों का सा या दीवे की शिखा की लाली की भान्ति है। या धूसरी ऊन की भान्ति है। यह सूक्ष्म शरीर के बायें ओर से निकल कर भ्रमण करता है कभी हितानों नाड़ी में बैठ कर दृष्ट श्रुत वासनाओं द्वारा नदी पर्वतादि नाना विश्व को रच लेता है। यह इस स्थूल शरीर से सुन्दर, शक्ति शाली, और पवित्र है। जब मनुष्य को अच्छे और नये कपड़े पहनने को मिल जाते हैं तब वह पुराने कपड़ों को खुशी से छोड़ देता है ऐसे ही जीर्ण हुए शरीर को त्याग नये शरीर को धारण करता है। जैसे पुराने टूटे फूटे गहनों से सुनार नये गहने बनाता है ऐसे ही मृत्यु नया और सुन्दर जीवन देता है। जब फटी पुरानी पुस्तक की नई जिल्द बन्ध जाती है तब वह बहुत दिन चलती है ऐसे ही मरण के पश्चात् उस को दृढ और सुन्दर शरीर मिलता है और से उसकी आयु स्थूल शरीर से दुगनी होती है। फिर उस से भी मरता है तब आकाश लोक को प्राप्त होता है जिस को दिव और स्वर्ग लोक भी कहते हैं। वहां विश्व और तैजस संज्ञक जीवात्मा प्राज्ञ में मिल जाते हैं इस जन्म में इसकी चौगुनी आयु होती है इसी प्रकार सूक्ष्म और ऊंची आनन्द की अवस्था को यह जीव प्राप्त होता चला जाता है। ऐसे ही ऊपर सात लोक और सात शरीर हैं उन के द्वारा उन का भोग करता हुवा परम पद को प्राप्त हो जाता है। मर के फिर जन्म नहीं लेता। इस अवस्था में मृत्यु से डरना नहीं चाहिये मृत्यु के समय मृत्यु का देवता उसकी उन्नति के लिये रहता है।

स यत्राऽयमात्माऽबल्यं न्येत्यसंमोह मिव न्येत्यथैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एता- स्तेजो मात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रा- मति स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवति ॥ १ ॥ एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न

जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयत इत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतीत्याहुरेकीभवति न मनुत इत्याहुरेकीभवति न स्पृशतीत्याहुरेकीभवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति स विज्ञानो भवति स विज्ञानमेवान्ववक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥ २ ॥ तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरति ॥ ३ ॥ तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरंरूपं तनुत एव मेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ॥ ४ ॥ स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन । अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ॥ ५ ॥ तदेष श्लोको भवति । तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य । प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचिदेह करोत्ययम् । तस्माल्लोकात्पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मण इति नु कामयमानोऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ॥ ६ ॥

श्री गंगा जी ने शान्तनु राजा से कहा है कि जैसे किसी मनुष्य का सम्बन्धी जब कारागार में जकड़ा जाता है तबतो उत्सव और खुशियाँ मनाते है और जब कारागार से मुक्त होता है तब उस के लिये रोते पीटते हैं। ऐसे ही शरीर से युक्त होकर जन्मना कारागार में जकड़ना है और शरीर से वियुक्त मरना कारागार से छूटना है।

"एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति इत्यहोवाच याज्ञवाल्क्य,,

"जात एव न जायते कोन्वेनं
जनयेत् पुनः विज्ञान मानन्दं ब्रह्म"

"आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"

इन्ही भूतों से निकल कर इनों में ही लय हो जाता है और मर कर दूसरा जन्म नहीं होता।

यह कभी भी उत्पन्न नहीं होता है और कोई भी इस के उत्पन्न करने वाला नहीं है और यह विज्ञान आनन्द मय ब्रह्म है ॥ २ ॥

आनन्द से ही यह भूत उत्पन्न होते है और पैदा हुवे आनन्द से जीते हैं और

फिर आनन्द में ही समाते हैं ॥ २

जिस मरणे से जग डरे मोहि बड़ो आनन्द।
कब मरिहों कब पायहों पूरण परमानन्द ॥

(कबीर)

शंकाः-इस से तो यह सिद्ध हुआ कि धर्म अधर्म और ज्ञान अज्ञान की उन्नति अवनति वृथा है सब ही प्राणी मुक्त हो जायगे ?

समाधानः-मुक्त होने में क्या सन्देह है। धर्माधर्म के फल को तो सूक्ष्म शरीरों में भोगते जायंगे। उनके लिये नीची योनियों में आने की आवश्यकता नहीं हम नहीं जानते कि सृष्टी की रचना, स्थिति, प्रलयादि का क्रम क्यों और कब से हुआ परन्तु यह जानते हैं कि सृष्टि की रचना एक गिरावट है परमात्मा से प्रकृति उत्पन्न हुई प्रकृति से महतत्व उत्पन्न हुआ, महतत्व से अहंतत्व, उससे आकाश आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल जल से पृथ्वी, पृथ्वी से घास फूस अन्नादिक, उससे सूक्ष्म जन्तु और वृक्ष हुए, वृक्षों से रामजी की गायादिक पशु, जो शाखों पर रहते हैं, उन से बड़े पशु और उससे मनुष्य उत्पन्न हुआ। पहले पेट के बल चलने वाले सर्पादिक हुए, उनसे उन्नत पश्वादिक हुए जो चारों पैरों से चलने वाले हैं। घुटनों पर हाथ रख जिस प्रकार मनुष्य झुक जाता है इसी भांति पेट के बल पड़े हुओं की अपेक्षा उन्नत हुए और उन से सीधा खड़ा हुआ ऊपर को देखने वाला मानव हुआ। उसके बाद चारों ओर देखने वाले भूत, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, देवता पितर इत्यादि कर्मानुसार उन्नति करता हुआ चला जावेगा।

प्रश्नः-मनुष्यों के मरने के बाद उसके जीव की क्या और कैसी गति होती है।

उत्तरः-उसकी तीन गति हैं। प्रथम जैसे तेली के बैल की जो अपने जीवन में सहस्त्रों कोष का मार्ग चलता है परन्तु रहता है वहां का वहीं। ऐसे ही स्त्री, पुत्र धनादिकों में अनुरक्त हुऐ जीव मर मर करके वहीं जन्मते रहते हैं जैसे एक साहूकार ने कथा के अनुसार एक ही घर में बकरा, बैल, सांप, स्त्री, पुत्र, घोड़ी आदि योनियां धारण कर उसी घर में रहा। दूसरी घटी यन्त्र कूप की तरह जैसे नीचे से भरे आकर ऊपर खाली होते हैं और फिर भरने के लिये नीचे चले जाते हैं। ऐसे ही जीव यज्ञादिक पुण्य कर्मों के प्रभाव से स्वर्ग लोक को जाते हैं। और वहां कर्मों का फल भोग कर नीचे को आते हैं।

"पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापं उभाभ्यां मनुष्य लोकम्"

पुण्य कर्मों से देव योनियों को पाता है पाप से पश्वादि योनियों को। तथा पाप पुण्य दोनों बराबर होने से जीव मनुष्य योनि को प्राप्त होता है तीसरी जिन को तत्व मस्यादि महावाक्यों द्वारा ब्रह्म का साक्षात कार हो जाता है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते वह ब्रह्म होकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता

है। मनुष्य कर्म योनि है पशु और देवतादिक भोग योनि हैं मनुष्य शरीर में जैसा जीव कर्म करता है वैसा फल देव पश्वादिक योनियों में भोगता है। देवता और पशुवों को पाप पुण्य नहीं लगता। यदि ऐसा हो तो मनुष्य योनि से भोग योनि थोड़ी गणना में होनी चाहियें। परन्तु हम देखते हैं कि एक ग्राम की चींटियों और मच्छरों के बराबर समस्त संसार के मनुष्य नहीं हैं। इससे यही समझना प्रतीत होता है कि निम्न अवस्था में अनन्त जीव हैं जो उन्नत अवस्था के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। पूर्व समय में उन्नति करते २ पशुओं से मनुष्य बने हैं। कितने ही बन्दरों से और कितने ही मच्छरों से और कितने ही अवर २ योनियों से भी मनुष्य योनि को प्राप्त होकर उन्नति करते गये हैं। मनुष्य योनि संख्या में थोड़ी है और मुक्ति का द्वार है। जैसे किसी बड़े अहाते में एक ही द्वार हो और सहस्रों अन्धे मनुष्य उसमें से निकलने का यत्न करते हों, जो भ्रमण करते २ ठीक दरवाजे के सन्मुख गति करते हैं वह निकल जाते हैं दूसरे यत्न करते रहते हैं और थोड़े २ निकलते रहते हैं। ऐसे ही ८३९९९९९ योनियों में से मनुष्य शरीर को प्राप्त होते रहते हैं और उसके द्वारा उन्नति करते हुए मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

स्त्री शिक्षा।

(ले० श्रीमती सूरज देवी)

ॐ विश्वानि देव सवितर दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥

अनन्त अपार ज्ञान और आनन्द स्वरूप परमात्मा को हमारा कोटान कोटि नमस्कार और धन्यवाद हो जो परमात्मा अनन्त क्षमा और दया के करने वाले हैं, जो हमारे जीवनों के दाता हैं वह हम को अपनी इच्छानुसार सन्मार्ग पर चलावें हमारी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि हमारी भारत की अबलाओं का उद्धार करें। आज मैं स्त्री शिक्षा के विषय में परमात्मा के नाम के साथ २ लिखने को उद्यत हूं। स्त्री शिक्षा के बिना किसी जाति, अथवा किसी देश की कभी उन्नति नहीं हुई यूरोप और अमेरीका की अङ्गनाओं की शिक्षित सभा में ऐसी उन्नत दशा का वर्णन है उसी से युरोपियन जाति उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई है। स्त्री शिक्षा के अभाव से ही इस देश की अधोगती हुई है। महामाया की साक्षात् प्रतिमा स्वरूप इन महिलाओं को इस समय उठाये

बिना तुम्हारे लिये क्या कोई और उपाय है तुम्हारी जाति के इस अधःपतन का प्रधान कारण है। मनु भगवान् ने कहा है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, नन्दन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्रा फला क्रिया।

जहाँ स्त्रियों का आदर मान नहीं जहाँ स्त्रियां सुख पूर्वक नहीं रहने पातीं, उस परिवार की उस देश की कभी उन्नति होने की आशा नहीं। इसलिये पहले इन्हीं को उठाना होगा। इन्हीं के लिये आदर्श मठ स्थापित करने होंगे। स्त्रियों की उन्नति हुये बिना भारत का भला नहीं हो सक्ता, एक पंख से पक्षी का उड़ना सम्भव नहीं है इसी लिये राम कृष्णावतार में स्त्री गुरु अङ्गिकार है इसीलिये नारी भाव का साधन हुआ और इसीलिये मातृ भाव का प्रचार किया गया है। एक समय था जब भारत वर्ष सब देशों से बढ़ कर उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था और स्त्री पुरुषों को समान अधिकार था। और स्त्रियों का पूरा आदर सम्मान यहाँ के लोग पूर्ण भाव से करते थे। इसीलिये अवतारों के साथ में प्रथम स्त्रियों का नाम ही आदर से लिया जाता है जैसे गौरी शंकर, सीताराम, राधेश्याम, श्यामा श्याम। और जो जीव के उद्धार करने वाली विद्या और शिक्षा है उसको ऋषि मुनियों ने स्त्री लिङ्ग शब्द दिया है। जैसे श्रुति, ब्रह्मविद्या, उपनिषद् गीता, इत्यादि इससे आप पूर्वज ऋषियों के भाव को अच्छी प्रकार समझ सकोगे शिक्षा उसी का नाम है, जिससे बुद्धि का विकाश और धर्म पर दृढ आस्था हो, और आपत्ति काल में भी कभी न घबराकर अपने धर्म पर आरुढ़ रहना जैसा कि जगदम्बा महारानी पतिव्रता सीता कोटान दुःख और विपत्ति के पड़ने पर भी न घबराई और अपने धर्म पर आरूढ़ रही। वही जगदम्बा सीता स्त्रियों के लिये आदर्श है गार्गी मैत्रेयी उपनिषदों में ब्रह्म विद्या की आदर्श हो गई हैं। क्योंकि बड़े२ ऋषियों ने उनको ब्रह्म विद्या का अधिकारी जान तत्व उपदेश किया है जैसा याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा है 'आत्मा वारे,द्रष्टव्यो श्रोसव्यो मंतव्यः साक्षात् कर्त्तेति'।

हे मैत्रेयी! आत्मा को देखना, सुनना जानना और साक्षात् करना चाहिये।

न वारे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति।
आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति॥

हे मैत्रेयी! सब काम के लिये कोई प्यारा नहीं होता है किन्तु आत्मा की कामना के अर्थ सब प्यारे होते हैं।

इत्यादि वेद में उपदेश दिया इसी प्रकार गार्गी के प्रति शुद्ध ब्रह्म का उपदेश करते हुये याज्ञवल्क्य बोले ब्रह्म का रूप स्थूल सूक्ष्म कारणादि उपाधियों से रहित शुद्ध अविनाशी है।

एतस्य अक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्यचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठितः॥

इसी अविनाशी अक्षर के जबर्दस्त शासनों में हे गार्गी सूर्य चन्द्रमा आदि लोक लोकान्तर तथा सम्पूर्ण विश्व कांपता हुआ स्थित है।

यो वा यो एतदक्षरं गार्गी अविदित्वा अस्मिन् लोके जुहति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि अन्तवदेवास्य तद्भवति

हे गार्गी! जो इस अक्षर अविनाशी परमात्मा को न जानकर के इसलोक में हजारों वर्ष हवन करता है यज्ञ करता है व तप करता है वह सब इसका नाशवान होता है।

'यो वा एतदक्षरं गार्गी विदित्वाऽस्मात् लोकात् प्रैति स कृपणः'।

हे गार्गी! जो पुरुष इस अक्षर अविनाशी परमात्मा को बिना जाने इस लोक से प्रयाण करता है वह कृपण है, दया का पात्र है, अर्थात् जन्म जन्मांतर के दुखों को भोगता है।

'अथ एतदक्षरं गार्गी विदित्वा अस्मा ल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः'।

और हे गार्गी जो इस अक्षर अविनाशी परमात्मा को जान करके इस लोक से चलता है वह ब्राह्मण है। इत्यादि पहले समय में बड़े बड़े विद्वानों की परीक्षा देवियाँ ही करती थीं जैसा कि बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि जब ब्रह्मविद्या के विद्वानों की परीक्षा करने में जनक जैसे महाराजा अशक्त हुये तब "वाच क्नवि उवाच" तो वाचक्नवि की कन्या बोली "अहं इमौ द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि" मैं इनको दो प्रश्न पूछूंगी। यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर देदेंगे तो तुम्हारे में इनको जीतने वाला कोई नहीं होगा। धन्य है उन देवियों को नमस्कार है उनके चरणों को जिनका विचार हुआ कभी अन्यथा नहीं हुआ।

हा! आज भारत की यह दशा हुई कि आज कल की स्त्रियें विद्वान् तथा ऋषि महर्षियों की परीक्षा तो क्या साधारण पुरुषों की भी परीक्षा करने में असमर्थ हैं परीक्षा करना तो दूर रहा वरंच आप ही झूठे ठग सैंसी कंजरादि की ठगियों में रोज ठगी जाती हैं, और उनको साधु समझ पूजती हैं। हे दया-निधे परमात्मन्! इनको अच्छी सुमति प्रदान करो, हे कृपासिन्धु भगवन्! भारतकी अबलाओं पर दया दृष्टि करके पूर्ववत् बुद्धि, विद्या तथा धैर्य का श्रोत इनके नस २ में बहा दो जिससे हे परमात्मन् इनका तथा भारत का पुनरुद्धार होवे और घर २ में शान्ति स्थापित होवे। मेरा माताओं तथा सब बहनों से यह नम्र निवेदन है कि रही सही बुद्धि शक्ति को इकट्ठा करके प्रातः तथा सायंकाल भगवान् से प्रार्थना करें जिससे देवियों का अज्ञान दूर हो और विद्या रूपी ज्योति से देदीप्य मान होवें यही मेरी आप सब पाठकों से प्रार्थना है।

योगतत्त्वोपनिषद्

योगतत्त्वं प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया ।
यच्छ्रुत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१

योगी जनों की हितकामना के लिये योग के तत्त्व को कहूंगा जिस के श्रवण और पठन मात्र से ही सब पापों से छूट जाता है ।

विष्णु र्नाम महायोगी महाभूतो महातपाः ।
तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥

महायोगी प्राणियों में श्रेष्ठ बड़ा तपस्वी पुरुषोत्तम तत्त्व मार्ग में विराजमान प्रज्वलित दीपक के समान दृष्टि गोचर हुआ ॥ २ ॥

तमाराध्य जगन्नाथं प्रणिपत्य पितामहः ।
पप्रच्छ योगतत्त्वं मे ब्रूहि चाष्टाङ्ग संयुतम् ॥३॥

पितामहने उस जगन्नाथ की आराधना की और हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर पूछा कि हे महाराज आठ अंगों से युक्त योगतत्त्व को कहो ॥ ३ ॥

तमुवाच हृषिकेशो वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।
सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखै मायाजालेन वेष्टिताः॥४

हृषिकेश उस प्रजापति को बोला कि योग के तत्त्व को यथार्थ प्रति पादन करूंगा श्रवण कीजिये संपूर्ण जीव सुख दुःखऔर माया जाल में लिपटे हुवे हैं ।

तेषां मुक्तिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिः नाशनं मृत्यु तारकम् ॥५

उन जीवों की मुक्ति करने वाले और माया जाल को छेदन करने वाले तथा जन्म मृत्यु बुढापा व्याधियों के नाश करने वाले और मृत्यु से पार उतारने वाले मार्ग को कहूंगा ॥ ५ ॥

नाना मार्गैस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम् ।
पतिताः शास्त्र जालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥६

जो कैवल्य परम पद अर्थात् मोक्षपद अनेक मार्गों से भी दुष्प्राप्य है । मनुष्य शास्त्रों के जाल में पड़ जाते हैं और उस शास्त्र जाल से मनुष्यों की प्रज्ञा मोह को प्राप्त हो जाती है ॥ ६ ॥

अनिर्वाच्यं पदं वक्तुं न शक्यं तैः सुरैः रपि ।
स्वात्मप्रकाश रूपं तत् किं शास्त्रेण प्रकाश्यते ॥७

जिस अनिर्वचनीय अर्थात् अवर्णीय मोक्ष पद को देवता भी कहने को नहीं समर्थ होते हैं फिर भला उस आत्मा के प्रकाश करने वाले मोक्ष पद को शास्त्र कैसे प्रकाशित कर सकते हैं ॥ ७ ॥

निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ।
तदेव जीव रूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् ॥ ८ ॥

क्योंकि वह आत्मा अकथनीय निर्मल शान्त सर्वातीत विकार रहित है। वही आत्मा जीव रूप से पाप और पुण्यों के फल से आच्छादित है ॥ ८ ॥

परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम् ।
सर्वभाव पदातीतं ज्ञानरूपं निरंजनम् ॥ ९ ॥

एवं गुणविशिष्ट परमात्मपद जीवता को कैसे प्राप्त हो गया। क्योंकि यह आत्मा सर्व भावों से दूर रहने वाला है ज्ञान रूप है और निरंजन है अर्थात् रागादि दोषों से रंगा हुवा नहीं है ॥ ९ ॥

वारि वत्स्फुरितं तस्मिंस्तत्राहंकृतिरुत्थिता ।
पंचात्मकमभूत्पिंडं धातुबद्धं गुणात्मकम् ॥ १०

जल के समान स्फुरित इस आत्मा में अहंकृति (अहं भावना) उत्पन्न हुई फिर यह गुणात्मक अर्थात् सत्वादिगुण युक्त सप्त धातुओं से बन्धा हुवा पञ्चात्मक पंच भौतिक पिण्ड हुवा ॥ १० ॥

सुखदुःखैः समायुक्तं जीवभावनया कुरु ।
तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धैः परमात्मनि ॥ ११

सुख और दुःखों से युक्त उस पिण्ड में जीव भावना की गई। इसी से उस शुद्ध परमात्मा की जीव संज्ञा कही ॥ ११ ॥

कामक्रोधभयं चापि मोहलोभमदोरजः । जन्म
मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधातृषा ॥ १२

यदि वह जीव, काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, गर्व, रजोगुण, जन्म, मृत्यु, कृपणता शोक, तन्द्रा भूख, प्यास, ॥ १२ ॥

तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च ।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः स जीवः केवलोमतः ॥ १३

तृष्णा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद, (रागादि मनोमालिन्यता) हर्ष (आनन्द) इन दोषों से रहित होने पर केवल उपाधि रहित शुद्ध आत्म स्वरूप जीव माना है ॥ १३ ॥

तस्माद्दोष विनाशार्थ मुपायं कथयामीति ते ।
योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ॥ १४

अतः उन दोषोंके दूर करने के लिये आप को उपाय कहता हूं योग से हीन ज्ञान किस प्रकार निश्चय करके मोक्ष देने वाला हो सकता है ॥ १४ ॥

योगोहि ज्ञान हीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढ मभ्यसेत् ॥ १५

ज्ञान से हीन योग मोक्ष कर्म में समर्थ नहीं हो सकता है अर्थात् ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं हो सकती है इस लिये मुमुक्षु जन को ज्ञान और योग का अच्छे प्रकार अभ्यास करना चाहिये ॥ १५ ॥

अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते ।
ज्ञान स्वरूप मेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैक साधनम् ॥ १६

अज्ञान से ही संसार है अर्थात् जब जीव अज्ञान से आवेष्टित होता है तभी बन्धन में आता है और ज्ञान होने पर मुक्त होता है

सब दुःखादिकों से छूट कर शुद्ध स्वरूप जीव मुक्त होता है केवल ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य पदार्थ का साधक ज्ञान ही है ज्ञान स्वरूप आदि में था ॥ १६ ॥

ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ।
निष्कलं निर्मलं साक्षात्सच्चिदानन्दरूपकम् ॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञान विवर्जितम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्त मथ योगं ब्रवीमिते ॥ १८

उत्पत्ति संहार स्फूर्ति ज्ञान से रहित निर्विकार, निर्मल, साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप कैवल्य परम पद जिस से निज रूप ज्ञात होता है वह ज्ञान कहलाता है। और अब तेरे लिये योग कहता हूं अर्थात् ज्ञान के स्वरूप को प्रतिपादन करके योग के स्वरूप को कहता हूं ॥ १७ ॥ १८ ॥

योगोहि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः ।
मंत्र योगोलयश्चैव हठोऽसौ राजयोगतः ॥१९
आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयः स्मृतः ।
निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता ॥

हे ब्रह्मन् । व्यवहार से योग के अनेक भेद हैं मन्त्रयोग लययोग हठयोग राजयोग और आरंभ घट परिचय निष्पत्ति और अवस्था सर्वत्र कथित हैं ॥ १९ २० ॥

एतेषां लक्षणं ब्रह्मन् वक्ष्ये शृणु समासतः ।
मातृकादि युतं मंत्रं द्वादशाब्दं तुयोजपेत् ॥२१
क्रमेण लभते ज्ञान मणिमादि गुणान्वितम् ।
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ॥२२

हे ब्रह्मन् इन के लक्षण को संक्षेप से कहता हूं श्रवण करो मातृकादिकों से युक्त मंत्र को जो बारह वर्ष तक जपे उसको अणिमादि विशिष्ट सिद्धियों का ज्ञान होता है। अधम साधक और अल्प बुद्धि इस योग को करता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

लय योगश्चित्त लयः कोटिशः परिकीर्तितः ।
गच्छंस्तिष्ठ स्वपन भुञ्जन् ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम् ॥ २३ ॥

स एव लययोगः स्याद्धठयोगमतः शृणु ।
यमश्च नियम चैव आसनं प्राणसंयमः ॥ २४
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानं भ्रूमध्यमे हरिम् ।
समाधिः समतावस्था साष्टाङ्गो योग उच्यते ॥

लय योग अर्थात् चित्तलय योग अनेक प्रकार का कहा है जैसे जाता, खाता, बैठा, खड़ा, सोता हुआ निष्कल ईश्वर का ध्यान करे इसी को लय योग कहते हैं। अब हठ योग को श्रवण कर—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, भ्रूमध्य भाग में हरि का ध्यान, समाधि, समतावस्था यह अष्टाङ्ग योग कहा है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ।
जालंधरोड्डियाणश्च मूल बन्धस्तथैव च ॥२६
दीर्घ प्रणव संधानं सिद्धान्तश्रवणं परम् ।
वज्रोली चामरोली च सहजोली त्रिधा मता ॥

महामुद्र, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालंधर, उड्डियाण, मूलबन्ध, दीर्घ प्रणव-संधान, इनका श्रवण, परम सिद्धान्त है वज्रोली

चामरोली सहजोली यह तीन प्रकार की है ॥ २६ ॥ २७ ॥

एतेषां लक्षणां ब्रह्मन्प्रत्येकं शृणु तत्त्वत ।
लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतर ॥

हे ब्रह्मन् ! अब इन पूर्वोक्तों के लक्षण ठीक सुनो मुख्य लघु भोजन यमों में यह एक लक्षण है अन्य गौण हैं ॥ २८ ॥

अहिंसा नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन ।
सिद्धं पद्मं तथा सिंह भद्रं चेति चतुष्टयम् ॥ २९

हे चतुरानन् ब्रह्मन् ! नियमों में एक हिंसा न करना ही मुख्य माना है । सिद्ध, पद्म, सिंह, भद्र, यह चार प्रकार के आसन हैं ॥ २९ ॥

प्रथमाभ्यास कालेतु विघ्ना स्युश्चतुरानन ।
आलस्य कैत्थनं धूर्त गोष्ठी मन्त्रादि साधनम् ॥

हे ब्रह्मन् । प्रथम इन के अभ्यास काल में अनेक विघ्न होते हैं उन से बचना चाहिये जैसे आलस्य, और धूर्त जनों की गोष्टी में मंत्रादि साधन का कथन करना ॥ ३० ॥

धातुस्त्रिलौलल्यकादीनि मृगतृष्णा मयानि वै ।
ज्ञात्वा सुधीस्त्यजयेत्सर्वान्विघ्नान्पुण्य प्रभावतः ॥

धातु और स्त्री विषयक चंचलता आदि को मृगतृष्णावत् समझा कर विद्वान् पुण्यों के प्रभाव से सर्व विघ्नों को छोड़ दे ॥ ३१ ॥

प्राणायामं ततः कुर्यात् पद्मासन गतः स्वयम् ।
सुशोभनं मठं कुर्यात् सूक्ष्मं द्वारं तु निर्व्रणम् ॥

फिर आप स्वयं पद्मासन पर बैठ कर प्राणायाम करे और छिद्रादि रहित छोटे द्वार वाला सुन्दर मठ बनवावे ॥ ३२ ॥

सुष्टु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः ।
मत्कुणैर्मशकैर्लूतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥

अच्छे प्रकार गोबर अथवा चूने से लेपनादि करावे खटमल मच्छर मकड़ी आदि को भले प्रकार निवारण करे ॥ ३३ ॥

दिने दिने च संमृष्टं संमार्जन्या विशेषतः ।
वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः ॥

और गुग्गुलादि उत्तम सुगन्धि द्रव्यों से वासित करे अर्थात् प्रति दिन धूप देवे ॥ ३४

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।
तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासन समन्वितम् ॥ ३५

बुद्धिमान् जन वस्त्र मृग चर्म कुशादि से निर्मित न बहुत ऊंचा न बहुत नीचा आसन बिछा कर पद्मासन होकर बैठे ॥ ३५

ऋजुकायः प्राञ्जलिश्च प्रणमेदिष्ट देवताम् ।
ततो दक्षिणहस्तस्य अंगुष्ठेनैव पिंगलाम् ॥

सीधा बैठ कर और हाथ जोड़ कर अपने इष्ट देवता को प्रणाम करे फिर दक्षिण हस्त के अंगूठे से पिंगला को ॥ ३६ ॥

निरुद्ध पूरयेद्वायु मिडयातु शनैः शनैः ।
यथा शक्त्यविरोधेनततः कुर्याच्च कुम्भकम् ॥

रोक कर शनैः शनैः इडा से वायु को पूर्ण भरे यथाशक्ति वायु को रोककर फिर कुम्भक प्राणायाम करे ॥ ३७ ॥

पुनस्त्यजेत्पिंगलयाशनैरेव न वेगतः ।
पुनः पिंगलयापूर्य पूरयेदुदरं शनैः ॥ ३८ ॥

फिर धीरे २ पिंगला से वायु को छोड़े जलदी न करे फिर पिंगला को वायु से पूर्ण करके धीरे २ उदर को पूर्ण करे ॥ ३८ ॥

धारीत्वा यथाशक्ति रेचयेदिडया शनैः ।
यथा त्यजेत् तथा पूर्यं धारयेदविरोधतः ॥३९॥

यथा शक्ति वायु को धारण करके धीरे २ इडा से निकाले जिस वायु को छोड़े उसी से सावधान हो कर फिर वायु को धारण करे ॥ ३९ ॥

जानु प्रदक्षिणीं कृत्य न द्रुतं न विलम्बितम् ।
अंगुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रा परिगीयते ॥४०

फिर जानु को प्रदक्षिणी कृत्य करके अर्थात् कुछ मोड़ कर न बहुत जल्दी न बहुत देर में अंगुलियों का स्फोटन करे इसे मात्रा कहते हैं ॥ ४० ॥

इडया वायुमारोप्य शनैः षोडशमात्रया ।
कुम्भयेत्पूरितं पश्चाच्चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥

षोडश मात्रा वाली इडा से शनैः २ वायु को रोक कर चौसठ मात्रा से कुंभित करे अर्थात् वायु से भरे ॥ ४१ ॥

रेचयेत्पिंगला नाड्या द्वात्रिंशत मात्रया पुनः
पुनः पिंगलया पूर्य पूर्ववत्सु समाहितः ॥ ४२

फिर बत्तीस मात्रा वाली पिंगला नाड़ी से वायु को बाहर निकाले फिर सावधान हो कर पूर्ववत् पिंगला को वायु से पूर्ण करे ॥४२

प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान् ।
शनैरशीतिपर्यन्तं चतुरिं समभ्यसेत् ॥४३ ॥

दिन के प्रातः मध्यान सायं आधिरात को अशीतिपर्यन्त चार चार कुंभक प्राणायाम का अभ्यास करे ॥ ४३ ॥

एवं मासत्रयाभ्यासान्नाडी शुद्धिस्ततो भवेत् ।
यदातु नाडीशुद्धिस्यात्तदा चिन्हानि बाह्यतः ॥

इस के बाद इस प्रकार करने से मात्रा के अभ्यास से नाड़ी की शुद्धि होती है । और जब नाड़ी की शुद्धि हो जाती है तब बाह्य चिन्ह ॥ ४४ ॥

जायन्ते योगिनो देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः ।
शरीरलघुता दीप्ती जाठराग्निविवर्धनम् ॥

योगी के देह में हो जाते हैं उन को अच्छे प्रकार कहूंगा शरीर हलका हो जाता है जठराग्नि दीप्त होता है और बहुत बढ़ जाता है ॥ ४५ ॥

कृशत्वं च शरीरस्य तदा जाये न्निश्चितम् ।
योगाहितकराहारं वर्जयेद्योगवित्तमः ॥ ४६

तब निश्चय शरीर कृश हो जाता है उस समय उत्तम योगीजन योग में विघ्नकारी भोजनों को त्याग दे ॥ ४६ ॥

लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम् ।
शाकजातं राजिकादि बह्वि स्त्रीपथसेवनम् ॥

प्रातः स्नानोपवासादि काय क्लेशांश्च वर्जयेत् ।
अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ॥

लवण सरसों अथवा राई की

कांजी खट्टे पदार्थ उष्ण गर्म रूखे तीक्ष्ण मरिचादि हींग, आदि शाक वन्हि स्त्री इत्यादि कोंको त्याग दे और पथ्य सेवन करे उत्तम स्निग्ध पदार्थ खावे प्रातः कालिक स्नान व्रत आदि शरीर के दुःख दाई, योग विघ्नकारक बातों को छोड़ दे योगाभ्यास काल में अच्छे उत्तम क्षीरादि भोजन करे ॥ ४८ ॥

गोधूम मुद्गशाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः ।
ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायुधारणे ॥४६

जौ, गेहूं, मूंग, सुन्दर शालि चावल आदि योग के वृद्धि कारक पदार्थ कहे हैं इत्यादि पदार्थ खाने से अच्छे प्रकार वायु को रोक सकता है ॥ ४६ ॥

यथेष्टधारणाद्वायोः सिध्येत्केवल कुम्भकः ।
केवल कुम्भके सिद्धे रेचपूर विवर्जिते ॥ ५०

यथेष्ट वायु के रोकने से केवल कुंभक प्राणायाम सिद्ध होता है । रेचक और पूरक को छोड़ कर कुंभक प्राणायाम सिद्ध होने पर ॥५०॥

न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
प्रस्वेदो जायते पूर्वं मर्दनं तेन कारयेत् ॥५१

उस सिद्ध पुरुष योगी को तीनो लोकों में भी दुर्लभ वस्तु नहीं इसकी प्रथम अवस्था में पसीना बहुत होता है अतः उस योगी को खूब शरीर मर्दन कराना चाहिये ॥ ५१ ॥

ततोपिधारणाद्वायोः क्रमेणैव शनैः शनैः ।
कम्पो भवति देहस्य आसनस्थस्य देहिनः ॥

फिर भी क्रम से धीरे २ वायु के रोकने से उस आसन पर विराजमान योगी जन के शरीर में बहुत कम्प होता है ॥ ५२ ॥

ततोऽधिकतराभ्यासाद्दार्दुरी स्वेन जायते ।
यथा च दर्दुरो उत्प्लुत्योत्प्लु गच्छति ॥ ५३ ॥

फिर भी अधिक अभ्यास करने से स्वय मेव दार्दुरी भाव हो जाता है अर्थात् मेंढकत्व धर्मावच्छिन्न हो जाता है । जैसे मेंढक कूद कूद कर चलता है इसी प्रकार उस योगी जन की गति हो जाती है ॥ ५३ ॥

पद्मासनस्थितो योगी तथागच्छति भूतले ।
ततोऽधिकतराभ्यासाद् भूमित्यागश्च जायते ॥

जैसे योगी जन पद्मासन पर बैठा हुआ भूतल पर चलता है उसी प्रकार अधिक अभ्यास होने पर भूमि का त्याग भी कर देता है । आकाश में हवा खाता फिरता है इतनी सामर्थ उसके अन्दर आ जाती है ॥५५

पद्मासनस्थ एवासौ भूमिमुत्सृज्य वर्तते ।
अतिमानुष चेष्टादि तथा सामर्थ्यं मुद्भवेत् ॥

वह योगी जन भूमि पर बैठा हुआ ही जैसे भूमि को छोड़ देता है इसी प्रकार देवताओं के सदृश चेष्टा और सामर्थ्य हो जाती है ॥ ५५ ॥

न दर्शयेच्च सामर्थ्यं दर्शनं वीर्य वत्तरम् ।
स्वल्पं वा बहुधा दुःखं योगी न व्यथते तदा ॥

योगी अपनी सामर्थ्य को अथवा पराक्रम को न दिखावे और न ही स्वल्प अथवा बहुत दुःख को दिखावे तब उसे कोई प्रकार की

व्यथा नहीं होती है ॥ ५६ ॥

अल्पमूत्रपुरीषश्च स्वल्पनिद्रश्च जायते ।
कीलवो दृषिका लाला स्वेददुर्गन्धतानने ॥

और उस योगी के बहुत कम पेशाब तथा शौचादि की शंका होती है और बहुत थोड़ा सोता है मुख में कील, दृषिका फोड़े लार, पसीना दुर्गन्ध आदि कभी भी नहीं होते हैं ॥ ५७ ॥

एतानि सर्वथा तस्य न जायन्ते ततः परम् ।
ततोऽधिकतराभ्यासाद्बलमुत्पद्यतेबहु ॥५८

यह पर्वोक्त योग बाधक लक्षण उस योगी जन के त्रिकाल में भी नहीं होते हैं फिर अधिक अभ्यास करने से अपूर्व पराक्रम इस के शरीर में उत्पन्न हो जाता है ॥ ५८ ॥

येन भूचर सिद्धिः स्याद्भूचराणां जये क्षमः ।
व्याघ्रो वा शरभो वापि गजो गवय एव वा ॥

और उसके अन्दर भूचर सिद्धि होजाती है अर्थात् "पृथिव्यां ये ये विचरण शीला जन्तवः सन्ति तेभ्योप्यधिका सिद्धिस्तस्या जायते" सर्व पृथिवीचरों के जीतने में समर्थ होता है और व्याघ् शरभ हाथी नीलगाय आदि भी उस को पराजित करने को असमर्थ होते हैं ॥ ५९ ॥

सिंहो वा योगिना तेन म्रियन्ते हस्त ताडिताः
कन्दर्पस्य यथा रूपं तथा स्यादपि योगिनः ॥

यदि वह योगी शेर के मस्तक में एक थपेड़ा लगा देवे तो वह भी तत्काल यम लोक का अतिथी बनजावे और उस योगी का रूप कामदेव के सदृश्य दिव्य होजाता है ॥ ६० ॥

सेवा-भाव ।

जिस मनुष्य समुदाय में सेवा-भाव जाग्रत रहता है वह जन-समूह सुख, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, वैभव, उत्साह और आनन्द से परिपूर्ण रहता है। कारण जगत् की स्थिति ही सेवा पर निर्भर है। यदि सूर्य, वायु आदि देवताओं में सेवा न हो तो हमारा अस्तित्व कहां से हो और फिर माता पिता में सेवा-भाव न हो तो हमारी स्थिति कैसे रहे ? यह समस्त जगत इसी भाव के सहारे क्रिया कर रहा है, सेवा भगवान की दैवी सम्पत्ति है। जिसमें जितना सेवा-भाव अधिक है वह उतनाही उत्तम पुरुष है। सेवा ही से माता पिता के दुलारे बनते हैं, सेवा ही से हम देश और जाति के लाल बनते हैं और सेवा ही से हम अपने प्यारे परमात्मा के पुत्र बनते हैं। सेवा ही से मोक्ष-पद मिलता है और सेवाही से आनन्दकी प्राप्तिहोती है। आज

तक संसार में जितने महान् पुरुष अवतीर्ण हुए हैं सब ने आदर्श रूप में सेवा-भाव को व्यक्त किया है और सेवा-भाव का ही उपदेश दिया है। भगवान् बुद्ध, ईसामसीह, भगवान् राम, और आनन्द कन्द श्री कृष्ण सब प्रकार का ज्ञान कथन करने के पश्चात् करने को सेवा ही बता गए हैं। सेवा से रहित हृदय में भगवान का विकाश और प्रकाश कहां? सेवा से वंचित व्यक्ति में प्रेम की भावना कहां? सेवा से शून्य घर में सुख और शान्ति कहां? और सेवा से खाली देश व जाति में उन्नति कहां? ब्रह्म विद्या का जिज्ञासु ब्रह्मचारी ब्रह्मप्राप्ति के लिए ब्रह्मनिष्ठ आचार्य की सेवा में उपस्थित होकर सेवा करने का व्रत धारण करता है और सेवा द्वारा ही गुरु की कृपा से उस आगम्य और अगोचर ब्रह्म को प्राप्त करता है और अभय पद प्राप्त करता है। उपनिषद् में कथा आती है कि जाबाली का पुत्र सत्य काम ब्रह्म विद्या की प्राप्तिके लिए आचार्य के पास गया, गुरु ने उसको गो-सेवा की आज्ञा देकर अपने से पृथक् कर दिया। वह सत्य व्रत धारी गुरु की आज्ञानुसार गो-सेवा करता रहा अन्त में केवल इस सेवा द्वारा उसको ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होगई। सेवा से उदण्ड प्रकृति वश में हो जाती है, सेवा से मन में शान्ति और स्वभाव में नम्रता आती है। सेवा से अहंभाव दूर होकर भगवत् चरणों में प्रेम होता है। सेवा से सहानुभूति और प्रेम की प्राप्ति होती है सेवा द्वारा ही मनुष्य विश्वास पात्र बनता है। सेवा से पराया भी अपना हो जाता है सेवा में बड़ा जादू है, यह वशीकरण मन्त्र है, इससे अलभ्य वस्तु की प्राप्ति होती है, सेवा-भाव से खिंच कर भगवान् राम को शिवरी के घर जाना पड़ा आज भी हम देखते हैं कि सेवा द्वारा सात समुद्रपार रहने वाले ईसाई पादरी भारत वर्ष में आकर यहां की क्रूर असभ्य और बनचर जातियों को अपना अनुगामी प्रेमी और सेवक बना लेते हैं। सेवा प्रत्यक्ष योग है, यह संशय रहित सत्य है। यह तर्क और ज्ञान से ऊपर है। दूर क्यों जाओ तुम नित्य प्रति देखते हो कि जो मनुष्य अपने पशुओं की प्रेम से सेवा करते हैं उनके पशु उनके पीछे २ फिरते हैं। हम कहानी सुनते हैं कि एक गुलाम अपने मालिक की क़ैद से भाग कर जंगलों में फिरता था वहां उसने एक सिंह को पैर में कांटा लगने से पीड़ित देखा यह देखकर उसके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हुई और उसने सिंह का कांटा निकाल दिया। अवसर पाकर गुलाम पकड़ागया और उस के लिये सिंह से मरवा डालनेकी आज्ञा दी गई। दैव गति से वहीसिंह जिसका गुलाम ने कांटा निकाला था पकड़ा जाकर राजा के चिड़िया घर में लाया गया। राजा के आज्ञा देने पर गुलाम को सिंह के पिंजरे में छोड़ दिया गया परन्तु सिंह उस के निकट जाकर उसे सूंघ कर प्रेम से उसे चाटने लगा और प्रेम का भाव

पुष्ट करने के लिए दुम हिलाने लगा। यह बात देख कर सब लोग आश्चर्यान्वित हुए। उसका कारण पूछा गया तो उसने सब वृत्तांत कह सुनाया। उसको सुन कर राजा के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने गुलाम व सिंह दोनों को बन्धन से मुक्त कर दिया। वर्तमान यूरोपीय युद्ध में गोलों के भीषण अग्नि काण्ड में जब डाक भेजने का कोई प्रबन्ध न हो सका तो लोगों ने कुत्तों और कबूतरों को सेवा से वश करके उनके द्वारा डाक भेजने का प्रबन्ध किया। इन कुत्तों के लिए विशेष स्थान नियत किए जाते थे जहां पर इनकी बड़े प्रेम से सेवा की जाती थी फिर सैनिक खाइयों में इनको अपने साथ ले जाते थे और वहां से इनकी गर्दन में चिट्ठी बान्ध कर छोड़ देते थे। यह कुत्ते वहां से छूटते ही उन स्थानों में आ जाते थे। यद्यपि इनको रास्ते में बड़ी कठिनाइयाँ और कष्ट झेलने पड़ते थे परन्तु फिर भी उस अपूर्व सुख की याद में यह उन कष्टों की कुछ भी परवा नहीं करते थे। बात भी सत्य है सेवा कैसे भूली जा सकती है? जब पशुओं का भी यह हाल है तो भगवान् की तो बात ही क्या है वह तो अपने सेवक को भूलने ही क्यों लगे हैं?

निष्कामता और प्रेम ॥

सेवा में निष्कामता और प्रेम का होना आवश्यक है। सकाम सेवा बन्धन का कारण है और निष्काम सेवा मुक्ति का साधन है। संसार में मनुष्य तीन प्रकार से सेवा करते दिखाई देते हैं कुछ भय से कुछ लालच से और कोई २ निष्काम भाव से। भय से सेवा करने वाला बेगारी कहलाता है, इस प्रकार की सेवा करने और कराने वाले दोनों के लिए हानिकारक है। बेगार का करने वाला तमोगुणी, भीरु और अधम जैसी उपाधियों से विभूषित किया जाता है और बेगार का लेने वाला आसुरी भावों से युक्त होता है। ऐसे कर्म्म से आत्मा की अधोगति होती है। इस कर्म्म से मनुष्यों में अविश्वास, अप्रेम और जड़ता आती है उन्नति और सुख शान्ति चाहने वालों को इसका सर्वथा त्याग करना उचित है। सकाम सेवा यदि यथार्थ रीति और सत्य भाव से की जावे तो संसार की शोभा का कारण है। मजदूर, किसान, सैनिक, व्यापारी और अन्य नौकर चाकर सब ही सकाम भाव से सेवा करते हैं। यदि यह सब सत्य भाव से नीति युक्त सेवा में लगे हुए हों तो यह सेवा लोगों को सुख की देने वाली होती है इन्हीं के सहारे राष्ट्र खड़ा रहता है। यह लेने और देने का सिद्धान्त है। जो जैसा करता है वह वैसा ही पाता है। यह मजदूरी है। कर्म्म तो इसमें बन जाता है परन्तु यह आनन्द से शून्य है। सकाम कर्त्ता की दृष्टि ओछी होती है। वह जड़ पदार्थ पर अपना लक्ष रखता है, वह अज्ञान वश यह नहीं जानता कि यह सब नाशवान है। उसको यह मालूम नहीं है कि जिन पदार्थों के पाने के लिए वह परिश्रम करता है

वह पदार्थ भगवान् ने उसको अनायास ही भोगने के लिए दिए हैं। वह इस माया के खेल में मस्त हो जाता है परन्तु उस मदारी की तरफ दृष्टि नहीं रखता जो यह सब खेल खिला रहा है। अपनी समझ के अनुसार वह भी बड़े २ कर्म्म करता है परन्तु उनका फल नीरस और दुःखदाई होता है। वह हीरे और जवाहरात जमा करता है, उनकी बाह्य चमक, दमक और झूंठे मूल्य पर अपनी वृत्ति को लगा आनन्द मनाने की अभिलाषा रखता है परन्तु भूल कर यह नहीं सोचता कि ऐसी सुन्दर वस्तु के बनाने वाले की खोज करूं। फल यह होता है कि उन पत्थरों की भान्ति उसकी बुद्धि जड़ हो जाती है और उसका हृदय कठोर हो जाता है। यह बड़े घाटे का सौदा है। यह उलटा मामला है इस में मजदूर साहूकार से और चाकर राजा से अच्छा रहता है सकाम कर्म्म करने वालों का संसार बाह्य-बनावट में सुन्दर दिखाई देता है परन्तु वह बिना खुशबू के फूलों की वाटिका होती है। इसमें वास्तविक सुख और शान्ति कहां? निष्काम-सेवा शान्ति और आनन्द की देने वाली भगवान् गीता में कहते हैं:-

श्रेयोहि ज्ञान मभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यिते
ध्यानात्कर्मफलत्याग स्त्यागाच्छांति रनंतरम् ॥

अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से कर्म फल का त्याग उत्तम है। त्याग से शान्ति प्राप्त होती है।

सेवा में निष्कामता के अतिरिक्त प्रेम भाव का होना भी आवश्यक है। बिना प्रेम भाव के आनन्द नहीं आता। कर्म्म-फल का त्याग हृदय के मैल को काटता है परन्तु इस में अहं भाव बना रहता है और इसमें उदासीनता का भाव भी छिपा हुवा है। जिसकी सेवा की जावे जब उससे स्वाभाविक और निःस्वार्थ प्रेम होता है तब ही आनन्द पाता है और यही मनुष्य का परम कर्तव्य है। यह तब ही हो सकता है जब हम भगवान् को अपना लक्ष बनावें। जीव मात्र में उसी को विराजमान समझ कर प्रेम से सब की सेवा करें और उस सेवा में अपने अहं भाव को भूल जावें। जितना जितना यह भाव बढ़ता जाता है उतना २ ही आनन्द बढ़ता जाता है और जो सेवा इस भाव से हो जाती है वही सच्ची सेवा है। जैसे भगवान् सर्व व्यापक हैं वैसे ही उनकी सेवा भी व्यापक है। मनुष्य सब अवस्थाओं में, सब वर्णों और सब आश्रमों में प्रेम भाव से भगवान् की सेवा कर सकता है। शरीर, मन और इन्द्रिय सब भगवान् के समझ कर भगवान् के निमित्त अर्पण कर देने में ही आनन्द है। वर्तमान संसार में इस भाव की कमी हो गई है इसी से अब जीवन में उतना आनन्द नहीं है। फिर से यह भाव जाग्रत होवे ऐसा प्रयत्न सब को करना चाहिए। इस में स्वार्थ और परमार्थ दोनों की सिद्धि है॥

(सम्पादक)

आश्रम समाचार—थोड़ी वर्षा हो जाने से सरदी से झुलसे हुए और व्यथित वृक्षों और पौदों में जान पड़ गई और गोचर-भूमि में घास फूटने लगी है। ऋतु परिवर्तन हो रहा है। वृक्ष पुराने वस्त्रों (पत्तों) को उतार कर फेंक रहे हैं।

बसंत पंचमी के दिन तो सन्यासियों को छोड़ कर ब्रह्मचारी, कन्यायें और वानप्रस्थी प्रायः सब ही ने पीतवस्त्र धारण किए। बड़ा आनन्द रहा। दर्शक गण नित्य ही आते रहते हैं। दूर से आने वाले सज्जनों में निम्न लिखित सज्जन उल्लेखनीय हैं:-

१. पं० गौरी शंकर भार्गव बार. एट. ला. अजमेर। २. राय साहब बसन्त लाल एसिसटेन्ट कमिश्नर इन्कमटेक्स अम्बाला। ३. सरदार चान्दासिंह इन्कमटेक्स अफसर रोहतक ४. पं० हरिभाउ उपाध्याय भूतपूर्व सम्पादक नव जीवन और वर्त्तमान सम्पादक मालव मयूर। ५. मि० आर ब्रेम फोर्ड सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट पशु शाला हिसार। ६. कप्तान गुगनसिंह रोहतक। ७. पं दीनदयाल जी वकील गुड़गावां।

श्रीयुत पं० हरिभाउ जी उपाध्या भूतपूर्व सम्पादक हिन्दी नव जीवन की आश्रम की गो शाला के बारे में सम्मति—

गो-रक्षा और गो-पालन हिन्दू-जीवन का खास अंग हो गया है। इस आश्रम में यह पुण्यत्व देखने में मिलता है। गो-रक्षा के दो अंग मुख्य हैं (१) गो का लालन पालन और उत्तम सन्तति तथा (२) आदर्श दुग्ध शाला। इन दोनों दशाओं में यह आश्रम गो-रक्षा का वस्तु पाठ दे रहा है। गो-शाला की सफाई तथा व्यवस्थापकों की गो-भक्ति देख कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। गायें बाज़ बाज़ तो १३-१४ सेर तक दूध देती हैं। जो लोग बूढ़ी गायों को किसी तरह पिंजरा पोलों में बान्ध कर गोरक्षा या गो-पालन करने का सन्तोष मान रहे हैं उन्हें इस गो-पालन और गो-रक्षा से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और ऐसी संस्थाओं और शालाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(सम्पादक)

॥ भजन ॥

गई रजनी हुवा सवेरा, उठ के जपलो
तुम ओंकार ॥ टेक ॥

ब्रह्म मुहूर्त में उठ गाओ, गुण ईश्वर के ध्यान लगाओ। परमानन्द मग्न है जाओ, शोभन समय विचार, आया दिन गया अन्धेरा ॥१॥ पूर्व दिशा अब अरुण भई है, प्रकृति देवी पट बदल रही है। यम ने तम बांध गही है, जागे सब नर नार, हिये में हरि को हेरा ॥ २ ॥ प्रमुदित नलिनी विहंस खिली है, प्रिय समीर से सुरभि मिली है। अति शोभामय वनस्थली है, अलिगण करें गुंजार, लतें आम आंबरे केरा ॥ ३ ॥

ऊषा देवी के दर्शन पाकर, हुए प्रफुल्लित सभी चराचर । तुम क्यों सोये शीश झुका कर, जागा सब संसार करो भारत का सुलझेरा ॥ ४ ॥

वेद धर्म का सूर्य चढ़ा है, जामें ज्ञान अनन्त भरा है । सुनो पढ़ो होय लाभ निरा है, जिस से हो उद्धार सब मिट जाय तेरा मेरा ॥ ५ ॥

नव जीवन संचार हुआ है, ऐक्य भाव विस्तार हुआ है । सुख मय सब संसार हुआ है, ज्योति स्वरूप निहार, हरि का है हिरदे में डेरा ॥ ६

आश्रम में चिड़ियाँ चह चहावें, पक्षि मिलि हरि गीत सुनावें । नर नारी सब तुम को ध्यावें, कर रहे जय जय कार, धन्यवाद कहें तेरा ॥ ७ ॥

॥ भजन ॥

सब दुःख में करें पुकार आदि मेरी मय्यारी,
अरी मेरी मय्यारी ॥ टेक ॥

गर्भ वास में रक्षा कीनी, जन्मत ही कुच मुख में दीनी । क्षण क्षण में सुध हमरी लीनी, अवगुण सभी बिसार, प्यार करी मय्यारी ॥ १ ॥

पूत कपूत भले हो जावे, मात कुमात कभी न कहावे । बहुत दया हिरदे में आवे, जब कहै पुत्र ढिंग जाय, मार मोय मय्यारी ॥ २

शक्ति रूप होय सब में व्यापक, ब्रह्मा विष्णु रुद्र करि थापक । जपें निरन्तर तुम को जापक, निर्मल ज्योति अपार, लखै न लखय्यारी ॥ ३ ॥

तात गुरु भ्राता अरु राजा, दोष क्षमा करते सब लाजा । क्षमा स्वरूपिणी करें सब काजा, मात करैं उद्धार, वही रखवय्यारी ॥ ४ ॥

भक्तों में विष्णु भक्ति हो, शिव के संग आदि शक्ति हो । बन्धन ते देती मुक्ति हो, मन में यही विचार, जाऊँ रखय्यारी ॥ ५ ॥

॥ भजन ॥

जय जय सीताराम मुख से बोलो रे ॥ टेक ॥
बड़े भाग्य मानुष तन पाया,
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गाया ।
राम भजन करो सुकरम वाया,
तजदो खोटे काम, वृथा मत डोलो रे ॥ १
राम नाम है रत्न अमोला,
एक रत्ती और बावन तोला ।
सन्त जनों ने खूब टटोला,
पूर्ण करदे काम, हृदय बिच तोलो रे ॥ २
अष्ट प्रकार काम को त्यागो,
भगवद्भक्ति में नित लागो ।
सोये बहुत दिन अब तो जागो,
कौड़ी लगे ना दाम, प्यार तुम होलो रे ॥ ३
इष्ट धर्म आश्रम का राखो,
मुख से झूठ कभी मत भाखो ।
गांव गांव हों आश्रम लाखों,
बने देश हरि धाम, पाप को धोलो रे ॥ ४
गौ वृद्धों की सेवा करलो,
करके सेवा पार उतरलो ।
ईश्वर भक्ति मन में भरलो,
लो सतगुरु का नाम, आश्रम खोलो रे ॥ ५

॥ भजन ॥

जिस में तेरा नहीं विकाश,
　ऐसा कोई फूल नहीं है ॥ टेक ॥
मैंने देख लिया सब ठौर,
तुझसा मिला नहीं कोई और।
　सब का तुही एक सिर मौर,
इस में कुछ भी भूल नहीं है ॥ १ ॥
　तुझ से मिल कर करुणाकन्द,
मुनिवर पाते हैं आनन्द।
　तेरा प्रेम सच्चिदानन्द,
किस को मंगल मूल नहीं है ॥ २ ॥
　उर पर धर्म जीवनाधार,
गुरु जन कहें पुकार पुकार।
　उस का बेड़ा हो जाय पार,
जिसके तू प्रतिकूल नहीं है ॥ ३ ॥
　मन में हे शंकर सुख धाम,
तेरा गाय गाय गुन ग्राम।
　करणी करता हूँ निष्काम,
इस में संशय शूल नहीं है ॥ ४ ॥

जोड़ले भाइयों का अजीब किस्सा

ब्रह्मा की विचित्र लीला ॥

लन्दन की मीडलीरोड में जी० एलिस और एल० एलिस नामके दो जोड़ले भाई हैं जिनकी उम्र २६ साल है। वे दोनों इस समय कानून की शिक्षा एक साथ एक ही स्कूल में पा रहे हैं उन की शकल, सूरत, डीलडौल, बनावट तथा समस्त नाना लक्षण तो समान हैं ही, साथ साथ उन के अंगुलियों के निशान हस्तरेखाएं अंगूठे की छाप इत्यादि सारी बातें भी एक समान हैं। डाक्टरों ने दोनों के बदन की जांच की थी तो यह देख कर आश्चर्य हुआ, कि दोनों के शरीर में रक्त की गति और स्नायु सम्बन्धी समस्त बनावट एक दूसरे के बिल्कुल समान हैं।

ये बालक भारत वर्ष में पैदा हुए थे और अठारह मास की अवस्था में लन्दन गये थे। उस समय वे बहुत दुबले पतले थे। बचपन में दोनों एक साथ ही बीमार पड़ते थे और दोनों को एक ही रोग भी होता था। पाठशाला में पढ़ने पर भी उन की मानसिक और शारीरिक क्रियायें एक दूसरे के बिल्कुल सदृश थीं और वे जो काम करते वह ऐसा मिलता जुलता होता था कि दोनों की रिपोर्टों में मास्टरों को एक ही बात लिखनी पड़ती थी एक ही साथ दोनों भाई सदा पढ़ते रहे उनकी विचार शैली अभी तक एक ही सी है। एक बार का जिक्र है कि वे दोनों एक परीक्षा में उपस्थित हुये तो दोनों भाइयों का एक सवाल एक ही स्थान पर गलत हुआ, इस पर परीक्षकों ने उन पर नकल करने का अभियोग लगाया। बाद को जब जाँच हुई तो मालूम हुआ कि वे एक दूसरे से इतनी दूरी पर बैठे थे कि नकल होना असम्भव था। मास्टरों के उनके सम्बन्ध में निर्दोष होने का प्रमाण देने पर वे

छूट गये। एक बार भूगोलके परीक्षा पत्र के उत्तर में दोनों भाइयों ने इङ्गलैंड का एक नकशा स्मृति से खींचा तो देखा गया कि एक ही बिन्दु से दोनोंने उठाया था और बिल्कुल एक ही तरीके से बनाया था।

स्कूल छोड़ने के बाद एक साथ ही दोनों ने पहले इंजीनियरी को अपनाया, पर दोनों एक साथ ही उसे छोड़ कर कानूनी शिक्षा की ओर गये और अब भी एक ही साथ पढ़ रहे हैं।

एकतरा ज्वर।

१. गेरु को बारीक पीस कर धतूरे के अर्क में उड़द बराबर गोली बना लो। बुखार चढ़ने से दो घँटा पहले पूर्ण वयस्क को गरम जल के साथ दो गोली दो।

अथवा

ज्वर से दो घंटा पूर्व पीपल की दांतन करो।

अथवा

२० तोला साफ कत्था, २० माशा सफेद शुद्ध सँखिया इन की लुआबी दाने में गोली बनालें मटर के बराबर। ज्वर से दो घंटा पूर्व दो गोली हलवे में लो। अनुपान हलुआ, दूध, घी, आदि खाना चाहिये खटाई आदि त्याज्य।

खांसी।

गो दन्ती हड़ताल को गाय के दूध में बारीक पीस लो फिर ग्वार पाठे के रस में गोला बनाओ फिर उस को उपलों में फूक लो। मात्रा एक २ रत्ति पान में, अथवा मलाई में या शहद में दिन में २ बार खानी चाहिए। दवा खाकर दो घंटे तक पानी न पीना चाहिए।

अथवा

अलसी को साफ करके कूट कर तवे पर भून लो फिर उस में उतनी ही मिश्री मिलाओ। रात को सोते समय तथा प्रातः काल उठते समय गरम जल में ६ माशा खाने से पुराने से पुरानी खांसी दूर होती है।

तिल्ली।

कालादाना ५ तो० कसीस हरा उमदा ५ तो०, जुलाफा १ तो० सौंफ १ तो०, इन को बारीक पीस करके रखलें फिर १॥ तो० दवा में कुनीन १॥ मा० के हिसाब से मिलावें खुराक तीन मा० जल के साथ। परहेज चना और तेल।

शिरदर्द।

दालचीनी १ रत्ति, फेनस्टीन २ रत्ती, केफिन्स्ट्रास २ रत्ती इन का चूर्ण करके गर्म जल के साथ फांके दरद जाता रहेगा।

(सीताराम वैद्य)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मङ्गलाचरण	१
२.	भक्ति	४
३.	भजन	७
४.	भगवद्भक्ति आश्रम	९
५.	मिश्रित उपदेश	११
६.	स्त्री शिक्षा	१६
	ले० श्रीमती सूरजदेवी	
७.	योगतत्त्वोपनिषद्	१९
८.	सेवा-भाव	२५
	(ले० सम्पादक)	
९.	आश्रम समाचार	२९
१०.	भजन	२९
११.	जोड़ले भाइयों का अजीब किस्सा।	३१
१२.	अनुभूत औषधियें	३२
	(ले० श्री० घीसाराम वैद्य)	

निम्न लिखित महानुभाओं ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव बहादुर लेफ्टेनेन्ट राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
२. राव श्रीराम रईस नांगल	२५)
३. म० शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
४. चौ० धर्मसिंह जी नायब तहसीलदार रेवाड़ी	२५)
५. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	२५)

विना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किाओं को समझाया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञान धर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य -)॥।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम२ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य -।-)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य -)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय है फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथककड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥-) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल एक १००० ही प्रतियां हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।